संयुक्त राष्ट्रसंघ और पर्यावरण आंदोलन का प्रारंभ

राकेश ठाकुर
शोधार्थी, ति0 माँ0 भा0 वि0, भागलपुर
Email: rakeshthakurbgp90@gmail.com

सारांश

प्रथम विश्व युद्व की विभीषिका से पीड़ित मानव समाज को भविश्य में युद्वों से सुरक्षा प्रदान करने तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनायें रखने की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई थी। परंतु इसकी भूमिका सिर्फ अंतर्राष्ट्रीय शांति बनाए रखने तक ही सीमित नहीं है। पर्यावरण जैसे ज्वलंत मुद्दों से निपटना भी है। सुरक्षा परिषद, संयुक्त राष्ट्र संघ के सबसे शक्तिशाली और सक्रिय अंग है जो ऐसे मुद्दों को समाधान करती हैं। दृष्टिपात करे तो हमारा पर्यावरण गतिशील है और इसमें निरंतर बदलाव और विकास होता रहता है। तथापि बीसवीं सदी में एक बात स्पष्ट है कि मनुष्य ने धरती के पारिस्थितिकी–तंत्र और जैव–भू–रसायन चक्रों पर इतना अधिक प्रभाव डाला है क्रिया–कलाप अब पर्यावरण में बदलाव उत्पन्न कर रहे हैं जो ध ारती के प्राकृतिक परिवर्तनों में बाधा ला रहे हैं। जैव–विविधता के नाश, भू–विस्तार में परिवर्तन, जलवायु परिवर्तन जैसी पर्यावरणीय समस्याओं के प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद हम अभी भी ऐसे क्रिया–कलाप कर रहे हैं जसे इन समस्याओं का प्रति–व्यक्ति उपभोग बढ़ेगा वैसे–वैसे हमारे समक्ष पर्यावरण की समस्याएं भी बढ़ेंगी।

प्रस्तावना

पर्यावरण संबंधी कोई भी वाद–विवाद और उसे एक ''वैश्विक मुद्दा'' बनाना एक कठिन कार्य है। मोटे तौर पर इसके तीन प्रमुख कारण हैं। पहला, पर्यावरणीय समस्याओं का विज्ञान जटिल है। हम ऐसी अनेक अंतर्संबंधित गतिशील व्यवस्थाओं पर विचार कर रहे हैं जिनका अंतर्गत पुनर्भरण तंत्र चलता है। दूसरे, ऐसे अनेक पणधारी हैं जो पर्यावरणी समस्याओं के कारणों और समाधान दोनों में शामिल हैं। उन सभी को समन्वित तरीके से संगठित करना कठिन है। तीसरे, वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए हमारी अपनी उपभोग की रीति में परिवर्तन की आवश्यकता होगी, जिसका अर्थ होगा हमारी जीवनशैली में परिवर्तन। इसके लिए व्यक्तिगत स्तर पर वचनबद्धता की आवश्यकता होगी जो हर कोई नहीं चाहेगा। मानव–पर्यावरण संबंधों में न केवल हर व्यक्ति द्वारा संसाधनों के प्रयोग का प्रश्न शामिल है बल्कि इसमें हमारी पर्यावरण विज्ञान को समझने की क्षमता, पर्यावरण को प्रभावित करने की क्षमता, पर्यावरण के मूल्यों में हमारा विश्वास और स्थानीय एवं विश्व स्तर पर इसके समाधान के लिए हमारे प्रयास भी शामिल हैं।[1]

संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्त्वाधान में विशेष रूप से अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों में पर्यावरणीय

समस्याओं का निर्धारण व इसके समाधान इत्यादि पर कार्य किया जाता रहा है। हम देखते है कि औद्योगिक क्रांति मनुष्य की उत्पादन प्रक्रिया में तेजी लाने की आकांक्षा का परिणाम थी। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में यह स्पष्ट हो गया था कि यह प्रक्रिया पर्यावरण को व्यापक क्षति पहुंचा रही है। किंतु इस स्थिति की गंभीरता को व्यापक रूप से नहीं समझा गया। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में औद्योगिक और कृषि विकास दोनों का दवाब बढ़ने लगा। ईंधन के रूप में कोयले के औद्योगिक और घरेलू इस्तेमाल से यूरोप और उत्तरी अमेरिका का वातावरण धुएं से भर गया। 1930 के दशक में बड़े–बड़े मैदानों में सूखे के प्रकोप से उत्तरी अमेरिका की समस्याएं और भी बढ़ गई। मृदा अपरदन का अनियंत्रित विस्तार होने लगा। मैदानी भाग मरूस्थल में बदल गए। उपरोक्त समस्याओं की अतिव्याप्तता के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा की सामाजिक–आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। सदी के मध्य में, गंभीर रूप से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या ने व्यापक ध्यान आकर्षित करना शुरू कर दिया। वायु और जल प्रदूषण ने सबसे अधिक ध्यान खींचा हालांकि भूमि प्रदूषण पर अधिक वाद–विवाद नहीं हुआ। भूमिक प्रदूषण का मामला कीटाणुनाशकों के प्रयोग के कारण प्रकाश में आया। इस कृषि विज्ञान में क्रांति माना गया। रेचल कारसन ऐसी पहली महिला थीं जिन्होंने पर्यावरण पर इन रसायनों के प्रयोग से पड़ने वाले प्रभावों की ओर ध्यान आकर्शित किया। उनकी सर्वश्रेष्ठ बिकाऊ पुस्तक के शीर्षक साइलेंट स्प्रिंग का संबंध उस खामोशी से है जो भूमि पर मृत पड़े उन पक्षियों के कारण छा जाती है जो कीटनाशकों के बढ़ते प्रयोग से रासायनिक विशाक्तता का शिकार हो गए। इस पुस्तक ने पर्यावरण आंदोलन को बढ़ावा दिया और अगले दो दशकों तक रसायनों द्वारा होने वाली पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के प्रति शोध को प्रोत्साहन दिया। [2] इसे आधुनिक पर्यावरण आंदोलन की प्रथम लहर कहा जाता है। इस लहर ने पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति विश्वव्यापी रूप से जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रथम सम्मेलन को बल प्रदान किया। इस सम्मेलन को प्रचलित रूप से स्टॉकहोम सम्मेलन के नाम से जाना जाता है।

स्टॉकहोम सम्मेलन विश्व पर्यावरणीय आंदोलन के विकास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। यह पहला अवसर था जब एक सरकारी मंच पर वैश्विक पर्यावरण की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक समस्याओं पर विचार–विमर्श किया गया ताकि यथार्थ रूप से कोई सुधारवादी कदम उठाया जा सके। इस सम्मेलन के चार बड़े परिणाम निकले। [3] पहला, इस सम्मेलन में मानवीय पर्यावरण पर एक नए बल की प्रवृत्ति दिखी। स्टोकहोम सम्मेलन से पूर्व लोगों ने प्रायः पर्यावरण को मानवीयता से जोड़कर नहीं देखा था। इस सम्मेलन ने पर्यावरण के प्रति हमारी सोच में महत्वपूर्ण बदलाव किया। दूसरे, स्टॉकहोम सम्मेलन में विकसित और विकासशील देशों के पर्यावरण के बारे में विभिन्न धारणाओं के बीच समझौते पर बल दिया गया। इससे पूर्व पर्यावरण की प्राथमिकताओं के निर्धारण में बड़ी भूमिका केवल विकसित देषों की थी। स्टॉकहोम सम्मेलन के पश्चात् अल्प–विकसित और विकासशील देशों की आवश्यकताएं अंतर्राष्ट्रीय नीति के निर्धारण में महत्वपूर्ण कारक बन गई। तीसरे, इस सम्मेलन में अनके गैर–सरकारी संगठनों (NGOs) की उपस्थिति और उनकी भूमिका ने विभिन्न सरकारों और अंतः सरकारी संगठनों की

एक नई और अधिक अपेक्षित भूमिका की शुरूआत पर बल दिया। अंततः स्टॉकहोम सम्मेलन का सबसे ठोस परिणाम था – संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme of UNEP) की षुरूआत। इसमें कुछ सीमाएं और कठिनाइयां थीं। परंतु ऐसी परिस्थितियों में संभावित रूप से यह सबसे श्रेष्ठ संस्था थी और यह विश्व समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए एक नई रूचि का केंद्र बन गई।

1980 के दशक के मध्य में पर्यावरणीय समस्याओं का व्यापक पुनरूत्थान हुआ। स्मिथ का मत है कि यह पुनरूत्थान रीगन प्रशासन के गैर–पर्यावरणीय नीति के विरूद्ध जनता dsifr i{kdkdkj.kcu ldrkFkkA[4] इस चरण को पर्यावरण आंदोलन की द्वितीय लहर कहा जाता है। इस द्वितीय लहर की विशेशता एक नव–पर्यावरणवाद है जिसमें इन समस्याओं की गंभीरता के बारे में जागरूकता को बढ़ावा मिला। इसका एक परिणाम यह निकला कि इन समस्याओं के आर्थिक व राजनीतिक तत्वों को बेहतर ढंग से समझा गया और पहले की अपेक्षा अब इन्हें बेहतर ढंग से अभिव्यक्ति मिली। दूसरी लहर ने अंतर्राष्ट्रीय मंच पर महत्वपूर्ण उपलब्धियों को जन्म दिया। इनमें ये नाम शामिल हैं–पर्यावरण और विकास संबंधी विश्व आयोग (1986), रियो सम्मेलन (1992), क्योटो प्रोटोकॉल (1997), तथा जोहानेसबर्ग सम्मेलन (2002)।

पर्यावरण और विकास संबंधी विश्व आयोग की प्रचलित रूप से ब्रन्ड्टलैंउ आयोग के नाम से जाना जाता है। इसने पोषणकारी विकास को बढ़ावा देकर मजबूत रूप से अर्थवव्यवस्था और पर्यावरणीय दृष्टि से स्वस्थ विकास के रूप में की ताकि भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को जोखिम में डाले बिना वर्तमान विश्व की आबादी की जरूरतें पूरी की जा सकें। इसकी रिपोर्ट में निष्कर्ष स्वरूप कहा गया कि पर्यावरण और विकास परस्पर जुड़े हुए हैं और यदि मौजूदा संस्थाएं स्वायत्त और विखंडित बने रहना चाहती हैं तथा वे अम्ल प्रदूषण जैसी गंभीर नीतिगत समस्याओं को अभिव्यक्त करने में अनुदारता का परिचय देती हैं तो नीतियों के प्रभाव बाधाग्रस्त बने रहेंगे। आयोग का निर्देश अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की नवीन पद्धतियों की खोज की ओर था ताकि पोषणकारी विकास की अवधारण के प्रति समझ को बढ़ावा दिया जा सके और इसका आगे विकास किया जा सके। इस लक्ष्य के लिए इस आयोग ने 1992 में रियो–द–जनेरो में एक व्यापक अंतर्राश्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया जिसे पष्थ्वी सम्मेलन कहा जाता है।

वस्तुतः पर्यावरणीय मुद्दे अनेक अर्थों में अंतर्राष्ट्रीय भी हैं और वैश्विक भी हैं। ओवन ग्रीन का मत है कि ऐसे पांच संदर्भ हैं जिनमें हम पर्यावरणीय समस्याओं को वैश्विक मान सकते हैं। पहला, कुछ पर्यावरणीय समस्याएं स्वाभाविक रूप से विश्वव्यापी हैं। इन समस्याओं का कारण स्थानीय हो सकता है पर इनके प्रभाव और समाधान को विश्व स्तर पर देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन से विश्व जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा मिल रहा है जो स्पष्ट रूप से यह संकेत करता है कि इसके प्रभाव विश्वव्यापी हैं और इस समस्या से निपटने के लिए विश्व स्तरीय सहयोग की आवश्यकता है। दूसरे, कुछ ऐसे संसाधन भी हैं जिनका प्रयोग समस्त विश्व करता है। इनमें वायुमंडल, गहन समुद्र और बाह्य अंतरिक्ष शामिल हैं। अतः समस्त संसार के हित में विश्वव्यापी स्तर पर इन संसाधनों का संरक्षण जरूरी है। तीसरे,

अनेक पर्यावरणीय समस्याएं राष्ट्रीय समस्याएं राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर के क्षेत्र को प्रभावित करती हैं, हालांकि ये पूर्णतया वैश्विक नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, एक देश में होने वाले पर्यावरण संबंधी कोई भी हानिकारक कियाकलाप पड़ोसी देशों में बदलाव उत्पन्न कर सकते हैं। जैसे कि इराक में युद्ध ने कश्मीर में काली वर्शा का असर दिखाया। चौथे, ऐसे अनेक पर्यावरण संबंधी मामले हैं जो स्थानीय अथवा राश्ट्रीय हैं किंतु वे एक से अधिक क्षेत्रों में प्रभाव दिखाते हैं। अतः उन्हें विश्व समस्याएं कहा जाता है। उदाहरणस्वरूप इसमें असंपोषित कृषि कार्यप्रणाली, मृदा अपरदन और वनों का कटाव शामिल है। अंततः और इन सबमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पर्यावरणीय मुद्दों का विस्तृत राजनीतिक और सामाजिक–आर्थिक प्रक्रियाओं से घनिष्ठ संबंध है जो स्वयं राजनीतिक अर्थव्यवस्था का भाग है। इस बात को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि पूंजी के वितरण, शक्ति, औद्योगीकरण महत्वपूर्ण रूप से पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। अतः वैश्वीकरण और राष्ट्र–राज्यों के बीच परस्पर–निर्भरता सभी पर्यावरणीय समस्याओं को एक अंतर्राष्ट्रीय आयाम प्रदान करते हैं। [5]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विश्व पर्यावरणीय मुद्दों में अनेक समस्याएं शामिल हैं जिनका परस्पर–संबंध है तथापि इनमें से प्रत्येक समस्या पर उचित ध्यान देने को आवश्यकता है ताकि इनके प्रति प्रभावकारी समाधान खोजे जा सकें।

संदर्भ ग्रंथ

1 फ्रांसिस हैरिस, *ग्लोबल एन्वायरमेंटल इशूज,* जॉन विली एंड संस, पृ0 **4**.
2 डेविड डी0 केंप, *एक्स्प्लोरिंग एन्वायरमेंट इशूज,* राऊटलेज, 2004, पृ0 **17**
3 तपन बिस्वाल, *अंतर्राष्ट्रीय संबंध (द्वितीय संस्करण),* ओरियंट ब्लैकस्वॉन, हैदराबाद, 2016, पृ0 **450–454, 455–456।**
4 जेड0 ए0 स्मिथ, *द एन्वॉयरमेंट पैराडॉक्स,* न्यूयार्क : प्रेन्टिस हॉल, 2000
5 केंप, 2004, पृ0 **19**
6 जॉन बेयलिस एंड स्मिथ, *द ग्लोबलाईजेशन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 **452**)